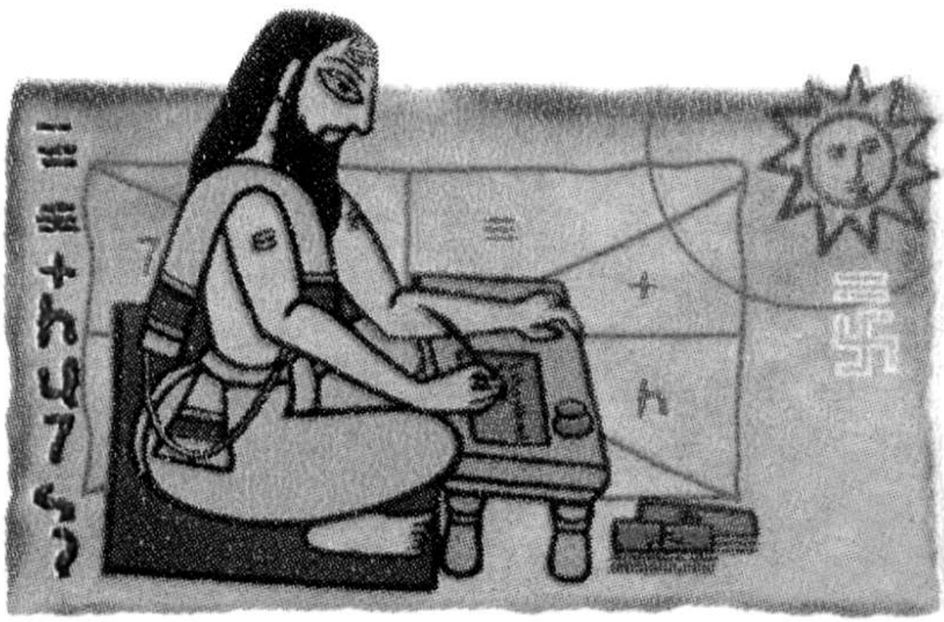
पाणिनि

भाषा का संसार और संसार में भाषा

राधावल्लभ त्रिपाठी



भारत में भाषाविषयक विमर्श की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। भाषा पर विचार उस समय ही आरम्भ हो गया था, जब वेदों के मंत्र रचे जा रहे थे। वेदों के ऋषियों ने वाणी, शब्द तथा अर्थ के संबंध व भाषा को ले कर जो चिंतन किया, उसका सातत्य साक्षात् या परोक्ष रूप से व्याकरण व भाषाविषयक चिंतन की भारतीय परम्परा में बराबर बना रहा। इस पूरी परम्परा में मुख्यतः वाक् के चार रूप सामने आते हैं जगत्स्रष्ट्री, जगत्प्रकाशक, अनंत या अक्षय तथा मुक्तिसाधक।

माना गया कि संसार शब्द या भाषा से रचा जाता है। इसके बाहर या तो संसार की सत्ता है ही

---

*इस आलेख में *अष्टाध्यायी* के संदर्भों के लिए प्रयुक्त संस्करण : पुष्पा दीक्षित (सम्पा.) (2009), *महर्षिपाणिनिप्रणीतः अष्टाध्यायीसूत्रपाठः* (प्रकरणनिर्देशसमन्वितः), ज्ञान भारती पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.

नहीं, या यदि है भी तो वह किसी ब्लैकहोल में समाया हुआ संसार है। ऋषियों ने वाक् को विश्व की स्रष्ट्री कहा है। वाक् या शब्द से संसार जन्मा यह मंतव्य तो संसार की अन्य संस्कृतियों या संस्कृतेतर चिंतन धाराओं में भी अनेकत्र रहा है, पर इस मंतव्य को पूरी तार्किकता और दार्शनिक उपपत्तियों के साथ सत्यापित करके साधना पद्धति का अंग संस्कृत की परम्परा में ही बनाया गया। ऐतरेय कहते हैं—

त्वष्टारं यजति। वाग्वै त्वष्टा। वाग्घीदं सर्वं ताष्टीव।। (ऐतरेय ब्रा. 4।6, पृ. 228) षड्गुरुशिष्य ने ताष्टि का अर्थ 'प्रकाशयति' किया है। ऐतरेय प्रजापति की सृष्टि-प्रक्रिया के रूपक द्वारा भी कलासर्जना प्रक्रिया की ओर इंगित करते हैं। तदनुसार प्रजापति ने तप किया, और तप के द्वारा वाक् की प्राप्ति की। वाक् से उन्होंने समस्त जगत को रचा (ऐतरेय ब्रा. 1।10. पृ. 367-68)।

ऐतरेय वाणी को समुद्र के समान बताते हैं, जिस तरह समुद्र कभी क्षीण नहीं होता, उसी तरह वाक् भी कभी क्षीण नहीं होती—

वाग्वै समुद्रः। न वै वाक् क्षीयते। न समुद्रः क्षीयते। (ऐतरेय ब्रा. 23।1, भाग 2, पृ. 227)। ऐतरेय महीदास ने कहा कि वाणी एक सागर है। सागर कभी चुकता नहीं।

ऐतरेय ने ही ही वाक् के तीन आयतनों का विवेचन किया था पुरस्तादायन, उपरिस्तादायन तथा मध्यायतन। उन्हें वैखरी, पश्यंती और मध्यमा वाक् के समकक्ष मान सकते हैं।

वाक्केंद्रित चिंतनपरम्परा वाक् को मनुष्य चेतना के विभिन्न स्तरों से जोड़ कर देखती है, साथ ही वह वाक् को चेतना के विकास और उस पर पड़े आवरणों को हटाने के साधन के रूप में भी देखती आयी है।

I

भाषा जीवन के व्यवहार को व्यक्त करती है। मनुष्य और उसका संसार इसमें समाया होता है। भाषा में हम अपने सारे संसार को समेट कर डुबा लेते हैं और उसको नये सिरे से उपजा भी लेते हैं। पाणिनि के व्याख्याकारों में सोलहवीं शताब्दी में भट्टोजी दीक्षित आदि ने इस दृष्टि से शब्द को प्रकाशक ही नहीं, आरम्भक और आविष्कारक भी कहा। शब्द अर्थ को प्रकाशित करता है अतः वह प्रकाशक है। आरम्भक से आशय है दुनिया की शुरुआत करने वाला और आविष्कारक से आशय है जो मौजूदा संसार है उसे उजागर करने वाला। संसार मौजूद रह कर भी हमारे लिए अव्यक्त हो सकता है। दण्डी कहते हैं—

इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसान्न दीप्यते।।

(दण्डी, *काव्यादर्श* : 1.4)

तीनों भुवनों में फैला यह विराट संसार हमारे लिए मात्र एक अँधेरे का पुंज भर होता, यदि शब्द नाम की ज्योति इसमें फैल कर इसे उजागर न करती।

वेदों के अध्ययन के लिए जिन विषयों का वैदिक काल में ही विकास हुआ उन्हें वेदांग कहा गया। शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष., छंदस् और व्याकरण : इन छह वेदांगों में चार शिक्षा, निरुक्त, छंदस् तथा वैयाकरण सीधे भाषा के विमर्श से संबंध रखते हैं। शिक्षा उच्चारण-विज्ञान और उच्चारणशास्त्र है, जिसे आजकल फ़ोनेटिक्स और फ़ोनोलॉजी कहा जाता है। वेद की प्रत्येक शाखा का उच्चारण की दृष्टि से विवेचन हुआ और शाखानुसार रचे गये शिक्षा के प्राचीनतम ग्रंथ प्रातिशाख्य कहे गये। सिद्धेश्वर वर्मा के अनुसार *ऋग्वेदप्रातिशाख्य* और *तैत्तिरीय प्रातिशाख्य* पाणिनि के आविर्भाव के पहले लिखे जा चुके थे। वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपनी रचना *पाणिनिकालीन भारतवर्ष* में ऋक्तंत्र नामक प्रातिशाख्य के 27 सूत्र उद्धृत किये हैं, जिनका पाणिनि के सूत्रों से साक्षात् साम्य है।

पाणिनि के सामने वेदांगों में प्रस्तुत भाषाचिंतन की सारी परम्परा साफ़ थी। व्याकरण उनके पहले विकसित हो चुका था। पाणिनि के पहले व्याकरण के बड़े आचार्य व्याडि हो चुके थे, जिनका उल्लेख *अष्टाध्यायी* में छात्र्यादिगण में मिलता है। उनसे भी पहले के अनेक आचार्यों से पाणिनि परिचित हैं, उनके द्वारा बनाए गये विधानों का वे अपने सूत्रों में उल्लेख करते हैं। पाणिनि ने अलग-अलग सूत्रों में प्रसंगानुसार काश्यप (1.2.25), शाकटायन (3.4.111), सेनक (5.4.112), आपिशलि (6.1.89), स्फोटायन (6.1.119), चक्रवर्मा (6.1.126), भारद्वाज (7.2.63), गार्ग्य (7.3.99, 8.3.20)), गालव (7.3.99), शाकल्य (8.3.19) आदि अपने पूर्ववर्ती चौंसठ आचार्यों का नामोल्लेख किया है। इन आचार्यों के रचे व्याकरण लुप्त हो गये और पाणिनि का व्याकरण बना रहा, तो उसका कारण पाणिनि की असाधारण विशेषता है। पाणिनि के लिए पहले के व्याकरण ईंट, चूने और गारे की तरह थे, जिनसे वे व्याकरण का ऐसा महाप्रासाद खड़ा कर सके, जिसकी नींव ढाई हज़ार सालों से जस की तस मज़बूत है। इस महाप्रासाद की कुछ खिड़कियाँ बंद हो गयीं, कुछ नयी खिड़कियाँ इसमें खुल गयीं, कहीं नये कक्ष बन गये यह अवश्य हुआ। यह भी हुआ कि उसकी अनुकृति में कुछ कामचलाऊ बसेरे भी बने। पर संस्कृत भाषा के लिए इस महाप्रासाद में ऐसी बसाहट बना दी गयी कि उससे साहित्य का विपुल भंडार रचा जा सका और अभी भी रचा जा रहा है।

पाणिनि के सामने वेदांगों में प्रस्तुत भाषाचिंतन की सारी परम्परा साफ़ थी। व्याकरण उनके पहले विकसित हो चुका था। ... आचार्य व्याडि हो चुके थे, जिनका उल्लेख *अष्टाध्यायी* में छात्र्यादिगण में मिलता है। उनसे भी पहले के अनेक आचार्यों से पाणिनि परिचित हैं, उनके द्वारा बनाए गये विधानों का वे अपने सूत्रों में उल्लेख करते हैं। पाणिनि ने अलग अलग सूत्रों में प्रसंगानुसार ... पूर्ववर्ती चौंसठ आचार्यों का नामोल्लेख किया है। इन आचार्यों के रचे व्याकरण लुप्त हो गये और पाणिनि का व्याकरण बना रहा, तो उसका कारण पाणिनि की असाधारण विशेषता है।

II

संस्कृत भाषा की एक अलग और अनोखी नियति रचने के लिए पाणिनि ने सबसे पहले तो चौदह प्रत्याहारसूत्रों का उपयोग किया। प्रत्याहारसूत्रों में संस्कृत की वर्णमाला गिनाई गयी है। पर कदाचित अन्य किसी भाषा में वर्णमाला के लिए इस तरह के सूत्रों की परिकल्पना नहीं की गयी।

इन प्रत्याहारसूत्रों के विषय में माना गया कि ये नटराज शिव से पाणिनि को प्राप्त हुए। इसलिए प्रत्याहारसूत्रों को शिवसूत्र भी कहा गया है। व्याकरण के परवर्ती ग्रंथ नंदिकेश्वरकाशिका में यह पारम्परिक श्लोक उद्‌धृत किया गया है—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकाम: सनकादिसिद्धानेदद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

अपने नृत्त (जिसे बाद की भाषा में नृत्य कहा गया) की समाप्ति पर नटराज शिव ने अपनी ढक्का या डमरू को चौदह बार बजाया। सनक, सनंदन आदि ऋषि मुक्ति की कामना से उनकी आराधना कर रहे थे, उन्होंने तो इस डमरू के इन स्वरों से तत्त्वज्ञान पाया और पाणिनि ने चौदह सूत्र। महेश्वर से मिले होने के कारण भट्टोजी दीक्षित आदि वैयाकरणों ने इन्हें माहेश्वर सूत्रों की संज्ञा दी है।

यद्यपि दयानंद सरस्वती का अनुगमन करते हुए विद्वान भीमसेन शास्त्री ने नागेश भट्ट और भट्टोजी दीक्षित जैसे मान्य आचार्यों की कड़ी ख़बर लेते हुए यह प्रतिपादित किया है कि डमरूनिनादवाली

कथा बेसिरपैर की नितांत अविश्वसनीय है और पाणिनि ने इन सूत्रों को अपने पूर्वज वैयाकरणों से प्राप्त कर अपने व्याकरण के अनुरूप सुधारा और सँवारा होगा।[1]

भीमसेन शास्त्री के अनुसार दसवीं शताब्दी तक के व्याकरण के ग्रंथों में पतंजलि का *महाभाष्य,* भर्तृहरि के महाभाष्य *दीपिका* और *वाक्यपदीय,* जयादित्य वामन की *काशिकावृत्ति,* जिनेंद्रबुद्धि के *न्यास* तथा कैयट के *महाभाष्यप्रदीप* आदि में इन सूत्रों का शिव से संबंध कहीं भी सूचित नहीं है, और ये ग्रंथकार उन्हें पाणिनिकृत मान कर चलते हैं।[2]

प्रत्याहार का अर्थ संक्षेप में प्रस्तुत करना या संक्षिप्त कथन है। ऊपरिलिखित चौदह सूत्रों से प्रत्याहार निर्मित होते हैं, अत: इन्हें प्रत्याहारसूत्र या प्रत्याहारविधायक सूत्र भी कहा गया।

ये प्रत्याहारसूत्र इस प्रकार हैं अइउण्, ऋलृक्, एओङ् ऐऔच्, हयवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्. जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल्।

पहले चार सूत्रों में सारे स्वर आ गये हैं, पाँचवें और छठे सूत्रों में अंतस्थ वर्ण (य, व, र, ल), सातवें सूत्र में प्रत्येक वर्ग के पाँचवे वर्ण, जिन्हें अनुनासिक कहा जाता है, आठवें और नवें सूत्र में प्रत्येक वर्ग के चतुर्थ वर्ण हैं, दसवें में तृतीय वर्ण। ग्यारहवें और बारहवें सूत्रों में प्रथम और द्वितीय वर्ण, तो तेरहवें में अवशिष्ट ऊष्म वर्ण (श,ष,स) हैं।

हयवरट् और हल् इन दो सूत्रों में हकार की आवृत्ति हुई है, उसका विशेष प्रयोजन है।

यह एक संक्षेपीकरण की विधि है, कूटभाषा की रचना की भी। पाणिनि ने वर्णमाला को परिभाषित करने के लिए नहीं, वर्णमाला के वर्णों के अलग अलग वर्ग बनाने और इन वर्गों को कूट नाम देने के लिए इन प्रत्याहारसूत्रों या शिवसूत्रों का उपयोग किया। उन्होंने इन सूत्रों के द्वारा संक्षिप्तीकरण की एक अचूक और अनोखी प्रविधि विकसित की। प्रत्येक सूत्र के अंतिम वर्ण को इत् कहा जाता है। उसकी अनुबंध संज्ञा भी है, क्यों कि वह वर्णमाला का भाग नहीं है, वह प्रत्याहार बनाने की प्रविधि के लिए परिसीमन का काम भर करता है। चौदह सूत्रों में चौदह इत्संज्ञक वर्ण या अनुबंध हैं ण् (1), क्, ङ् च्, ट्, ण् (2), म्, ञ्, ष्, श् ,व्, य्, र् तथा ल्। *अष्टाध्यायी* का सूत्र आदिरन्त्येन सहेता (1.1.71) इस प्रविधि को परिभाषित करता है। इस सूत्र का अर्थ है प्रत्याहारसूत्रों में पठित या परिगणित कोई भी वर्ण अपने बाद में आने वाले किसी भी इत् या अनुबंध से जुड़ कर प्रत्याहार बनाता है, और प्रत्याहार को फैलाने पर वह आदि वर्ण अपना तथा अपने साथ अंतिम इत्-संज्ञक वर्ण के पहले प्रत्याहारसूत्रों में गिनाए गये वर्णों का बोधक होता है। उदाहरण के लिए प्रथम प्रत्याहारसूत्र है— अइउण्। इस सूत्र के पहले वर्ण अ को चौथे सूत्र ऐऔच् के अंतिम वर्ण च् से योग कराने पर अच् प्रत्याहार बनता है। यह अच् प्रत्याहार अपने आदि अक्षर अ से लेकर इत्संज्ञक च् के पूर्व आने वाले औ पर्यंत सभी अक्षरों का बोध कराता है। इस तरह अच् कहने पर सारे स्वरों का बोध हो जाता है, हल् कहने पर सारे व्यंजनों का। इसके साथ ही प्रत्याहारों के द्वारा वर्णमाला का वितान खोलने की तीन कुंजियाँ और हैं— तस्मादित्युत्तरस्य (1.1.67), तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य (1.1.66) तथा षष्ठी स्थाने योगा (1.1.49)।

चौदह सूत्रों में गिनाए गये 41 स्वर-व्यंजनों को चौदह अनुबंधों से जोड़ कर 574 प्रत्याहार बनाए जा सकते थे। वार्तिककार कात्यायन बताते हैं कि *अष्टाध्यायी* में कुल इकतालीस प्रत्याहारों का प्रयोग किया गया है। इन इकतालीस प्रत्याहारों से वर्णमाला के सारे वर्ण ऐसे वर्गों में बँट गये, जिन्हें पाणिनि भाषिक व्यवस्थाओं या विधानों के व्यूह रचने के लिए पाणिनि ने अपनी पलटन बना लिया।

संक्षेपीकरण या कूट भाषा की आवश्यकता हर देशकाल में रहती है। आजकल अंग्रेज़ी पद्धति

---

[1] भीमसेन शास्त्री (1984), *प्रत्याहारसूत्रों का निर्माता कौन,* भैमी प्रकाशन, नयी दिल्ली : 34.

[2] वही : 7



भूर्ज वृक्ष की छाल पर सत्रहवीं सदी में अंकित *अष्टाध्यायी* की कश्मीरी पाण्डुलिपि

से शब्दों के आद्याक्षर ले कर बड़े शब्दों के संक्षेप तैयार किये जाते हैं। जैसे भारतीय जनता पार्टी का संक्षेप भाजपा हो गया पर पाणिनि की पद्धति का प्रयोग भारतीय जनता पार्टी के संक्षेपीकरण के लिए करेंगे, तो भार्टी हो सकता है।

प्रत्याहारों के संयोजन, विनियोजन और वर्गीकरण से फिर इनके साथ आगे या पीछे जुड़े अनुबंधों के द्वारा पाणिनि भाषा की संरचना के नियमों, शब्दनिर्माण की व्यवस्थाओं का जैसा तानाबाना रच लेते हैं, वैसा अन्य किसी भाषा की व्याकरण-रचना में सम्भवत: नहीं किया गया। अनुबंधों के द्वारा पाणिनि किसी एक सूत्र से असंख्य स्थलों पर लागू होने वाली व्यवस्था को एक या दो शब्दों में बता देते हैं। ये व्यवस्थाएँ हैं— वृद्धि, गुण, गुण-वृद्धि-निषेध, नुगागम या आत्त्व, इत्त्व आदि का आगम।

पाणिनि के बाद अन्य सम्प्रदायों व परम्पराओं में व्याकरण के अनेक ग्रंथ लिखे गये। इनमें *कातंत्र, चांद्र, जैनेंद्र, जैन शाकटायन, सरस्वतीकंठाभरण, मुग्धबोध* या *सारस्वत व्याकरण* के नाम लिए जा सकते हैं। पर पाणिनि ने प्रत्याहारसूत्रों के द्वारा भाषा के जटिल व्यवस्थाओं को सूत्र रूप में बहुत सहज ढंग से प्रकट करने की जो प्रविधि विकसित की थी, उसी का उपयोग इन सभी ने किया।

जिन प्रत्याहारसूत्रों पर पाणिनि के व्याकरण की सारी आधारशिला रखी गयी थी, उनमें भी संशोधन करके और कसावट लाने में पतंजलि और उनके बाद के वैयाकरणों को झिझक नहीं हुई। पतंजलि उनमें संशोधन प्रस्तावित करते हैं। पतंजलि कहते हैं कि चौदह सूत्रों में ञमङणनम् तथा झभञ् इन दो सूत्रों को मिला कर एक सूत्र ञमङणनझभञ् बनाने से भी एक सूत्र को अतिरिक्त बता

कर चौदह के स्थान पर तेरह सूत्रों से ही काम चल सकता है। भोज ने अपने *सरस्वतीकंठाभरण* में भी हयवरट् और लण् इन दो सूत्रों को मिला कर हयवरलण् यह एक सूत्र रख कर चौदह के स्थान पर तेरह प्रत्याहारसूत्र प्रस्तावित कर ही दिये। तेरहवीं शताब्दी के प्रख्यात वैयाकरण व *मुग्धबोध व्याकरण* के प्रणेता बोपदेव ने भी पाणिनिसम्मत प्रत्याहारों में संशोधन किया।

III

पाणिनि के जीवन का यत्किंचित परिचय उनके अनुयायियों पतंजलि आदि तथा काव्यों में उनके उल्लेखों से ही मिलता है। उनकी माँ का नाम दाक्षी था, इसलिए उनको कई आचार्यों व कवियों ने दाक्षीपुत्र के नाम से स्मरण किया है। वासुदेवशरण अग्रवाल दाक्षी नाम की महिला का उल्लेख इस प्रसंग में नहीं करते। वे दाक्षीपुत्र की अलग ही व्याख्या करते हैं। दक्ष एक जाति थी, दत्र लोगों का संघ दाक्षि कहा जाता था। पंजाब में शेरकोट के इलाक़े के आसपास इनकी बस्तियाँ थीं।

उन्हें शालातुरीय भी कहा गया है, क्यों कि वे शालातुर गाँव में जन्मे थे। यह गाँव वर्तमान पाकिस्तान में लाहौर के पास था। पाणिनि ने अपनी *अष्टाध्यायी* में *शिशुक्रंदीय, यमसभीय* तथा *इंद्रजननीय* जैसे काव्यों का प्रसंगवश सूत्रों में उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि प्रबंधकाव्य की परम्परा में पाणिनि के पूर्व वाल्मीकि की *रामायण* या *महाभारत* के अतिरिक्त अन्य अनेक काव्य रचे गये थे। *पंचतंत्र* (2.34) के उल्लेख के अनुसार यह माना जाता रहा है कि पाणिनि एक सिंह के द्वारा मार डाले गये थे।

कालिदास के पूर्व महाकाव्य की रचना करने वाले दो महाकवियों के नाम प्राप्त होते हैं— पाणिनि तथा वररुचि या कात्यायन। इन दोनों के रचे महाकाव्य लुप्त हो चुके हैं। ये दोनों व्याकरणशास्त्र के आद्य आचार्यों के रूप में ख्यात हैं। जल्हण ने अपनी *सूक्तिमुक्तावली* में राजशेखर के कतिपय श्लोक उद्धृत किये हैं, जिनमें से एक में बताया गया है कि पाणिनि ने व्याकरण के ग्रंथ के साथ *जाम्बवतीजय* महाकाव्य की भी रचना की थी—

स्वस्ति पाणिनये तस्मै यस्य रुद्रप्रसादतः।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम्।।

इसके आगे राजशेखर ने पाणिनि की उपजाति की प्रशंसा करते हुए कहा है कि जैसे उद्यान की शोभा जाति (चमेली) के फूलों से होती है, उसी प्रकार पाणिनि के काव्य की शोभा उनकी उपजातियों से बढ़ी है—

स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः।
चमत्कारैकसाराभिरुद्यानस्येव जातिभिः।।

सदुक्तिकर्णामृत में उद्धृत एक पद्य में दाक्षीपुत्र पाणिनि का नाम सुबंधु, कालिदास, भवभूति आदि कवियों के साथ लिया गया है।

जाम्बवतीजय महाकाव्य का नाम कहीं कहीं पातालविजय भी मिलता है। अमरकोश के टीकाकार रायमुकुट ने पाणिनि के *जाम्बवतीजय* का यह श्लोकार्ध भी उद्धृत किया है—

पयः पृषंतिभिः स्पृष्टा वांति वाताः शनैः शनैः।।

नमिसाधु ने रुद्रट के काव्यालंकार की टीका में *पातालविजय* से एक श्लोक उद्धृत किया है। पुरुषोत्तम की *भाषावृत्ति* तथा शरणदेव की *दुर्घटवृत्ति* में भी इस महाकाव्य का उल्लेख मिलता है। पं. बलदेव उपाध्याय के अनुसार आर्षकाव्यों के पश्चात् *जाम्बवतीजय* या *पातालविजय* संस्कृत का प्रथम महाकाव्य है। पाणिनि के नाम से लगभग 17 पद्य प्राचीन सुभाषित संग्रहों में प्राप्त होते हैं, जिनसे विदित होता है कि पाणिनि एक उत्तम कवि थे। इन श्लोकों में सर्वाधिक संख्या उपजाति छंद में निबद्ध श्लोकों की है। क्षेमेंद्र ने पाणिनि की उपजाति को विशेष सराहनीय माना है। यह महाकाव्य श्रीकृष्ण

द्वारा पाताल में पहुँच कर स्यमंतक मणि का पता लगाने और जाम्बवती से उनके विवाह की कथा पर आधारित रहा होगा— यह अनुमान किया जा सकता है। लेकिन, अनेक आधुनिक विद्वानों ने पाणिनि के कवि होने की बात को प्रवाद मात्र माना है।

IV

आधुनिक भाषाविज्ञान के अध्येता भी क्षेत्रविशेष में जा कर लोगों के भाषिक व्यवहार का अध्ययन करते हैं और उसके आधार पर भाषा के संगठन व व्यवस्था को पहचानते हैं। पाणिनि ने भी अपने क्षेत्र की भाषा का इसी तरह अध्ययन किया। पाणिनि ऐसा क्या कर गये जो आज के भाषाशास्त्री नहीं कर पा रहे हैं, और जिसके कारण ब्लूमफ़ील्ड से लेकर चॉम्स्की तक उनकी महामेधा और संगणकीय बुद्धिबल की प्रशंसा करते हैं।

ह्वेन सांग, या जिसे अग्रवाल ने श्यूआन् चुआङ् कहा है, ने पाणिनि का जीवनवृत्त लिखने के लिए शलातुर गाँव की यात्रा की थी। ह्वेन सांग बताते हैं कि शलातुर के लोग उस समय तक पाणिनि को याद करते थे। उन्होंने पाणिनि की मूर्ति अपने गाँव में लगा रखी थी। पाणिनि के विषय में उस गाँव में प्रचलित अनुश्रुतियों के अनुसार पाणिनि ने न केवल दूर-दराज़ के क्षेत्रों में यात्रा कर भाषा के नमूने संचित किये, उन्होंने व्याकरण-निर्माण की प्रक्रिया में ईश्वरदेव से परामर्श किया।

पाणिनि के इस संकलन व तैयारी के सिलसिले में शिष्टभाषा तथा रोजमर्रा के जीवन में बोलचाल की भाषा के अनेक नमूने संग्रहीत किये होंगे तथा अनेक सूचियाँ बनाई होंगी, जिनका उपयोग उन्होंने सूत्ररचना में किया। *धातुपाठ* और *गणपाठ* ये दो कोशात्मक संग्रह भी उन्होंने *अष्टाध्यायी* के निर्माण के पहले तैयार कर लिए होंगे। पतंजलि बताते हैं कि पाणिनि ने *गणपाठ* पहले लिखा *अष्टाध्यायी* बाद में। प्रत्याहारसूत्रों के साथ धातुपाठ और गणपाठ भी अष्टाध्यायी के अंग माने जाते रहे हैं, क्योंकि पाणिनि अपने सूत्रों में इनका उल्लेख करते चलते हैं।

पाणिनि के इस संकलन व तैयारी के सिलसिले में शिष्टभाषा तथा रोज़मर्रा के जीवन में बोलचाल की भाषा के अनेक नमूने संग्रहीत किये होंगे तथा अनेक सूचियाँ बनाई होंगी, जिनका उपयोग उन्होंने सूत्ररचना में किया। *धातुपाठ* और *गणपाठ* ये दो कोशात्मक संग्रह भी उन्होंने *अष्टाध्यायी* के निर्माण के पहले तैयार कर लिए होंगे। पतंजलि बताते हैं कि पाणिनि ने *गणपाठ* पहले लिखा *अष्टाध्यायी* बाद में। प्रत्याहारसूत्रों के साथ धातुपाठ और गणपाठ भी अष्टाध्यायी के अंग माने जाते रहे हैं, क्योंकि पाणिनि अपने सूत्रों में इनका उल्लेख करते चलते हैं। उदाहरण के लिए हरीतक्यादिभ्यश्च (4.3.167) इस सूत्र से हरीतकी गण के सारे शब्दों से अण् प्रत्यय होता है। हरीतक गण में कौन कौन से शब्द हैं यह गणपाठ बताएगा। हरीतकी गण के शब्द हैं हरीतकी, कौशातकी, नखरंजनी. शष्कंडी, दाडी, दोडी, श्वेतपाकी, अर्जुनपाकी, द्राक्षा, काला, ध्वाक्षा, गभीका, कण्टकारिका, पिप्पली, चिम्पा (चिञ्चा) तथा शेफालिका। प्लक्षादिभ्योऽण् (4.3.164) सूत्र से प्लक्षादि गण के शब्दों से अण् प्रत्यय लगेगा। प्लाक्षादि गण के शब्द गणपाठ से जाने जाएँगे। प्लक्षादि गण में प्लक्ष, न्यग्रोध, अश्वत्थ, इङ्गुदी, शिग्रु, कक्षतु तथा बृहती इतने शब्द आते हैं।

वासुदेवशरण अग्रवाल बताते हैं कि व्यास नदी के उत्तरी किनारे पर बाँगर में जो कुएँ होते थे, वे पक्के होते थे। खादर के कठार में पानी की बहिया होने से पक्के कुएँ नहीं बन सकते थे, इसलिए हर साल कच्चे कुएँ खोदे जाते जो टिकाऊ नहीं रह पाते थे। यह विशेषता इस क्षेत्र के नामों, बोलने के लहज़े और बोली में कैसे उतरती है इसकी पहचान 'उदक् च विपाशः' (4.2.74) में पाणिनि कराते हैं। दूर से किसी को पुकारने में, किसी के नमस्कार का उत्तर देने में बोलने वाले का लहज़ा

किस प्रकार परिवर्तित होता है, यह अष्टाध्यायी के अंतिम अध्याय के कतिपय सूत्रों में पाणिनि बताते हैं, और प्राच्य देशों के लोगों की रीति का उदाहरण देते हैं। इनमें कुछ सूत्र हैं :

वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः (8,2,82), प्रत्यभिवादेऽशूद्रे (8.2.83), दूराद्धूते च (8.2.84),
हैहेप्रयोगे हैहयोः (8.2.85) तथा गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् (8.2.86)।

इसी प्रकार प्रश्नोत्तर या डाँट-फटकार में या भर्त्सना करने में वाक्यों और स्वर के उतार-चढ़ाव के परिवर्तन या किन्हीं शब्दों के दोहराए जाने को भी पाणिनि अपने विधान में सम्मिलित करते हैं। विभाषा पृष्ठप्रतिवचने हेः (8.2.93), निगृह्यानुयोगे च (8.2.94) याआम्रेडितं भर्त्सने (8.2.96) आदि सूत्रों में उनका प्रचलित जीवंत भाषा का अध्ययन साफ़ झलकता है। दुलारते समय बच्चे को पुकारेंगे तो क्या नाम होगा, लोक-विश्वास पर नाम रखे जाएँगे, तो कैसे नाम हो सकते हैं— यह भी पाणिनि बताते हैं।

पाणिनि शाकटायन या यास्क की तरह सारे शब्दों की आख्यातमूलकता या धातुओं से सारी संज्ञाओं के निष्पन्न होने का आग्रह रख कर नहीं चलते। यथोपदिष्ट (6.3.109), संज्ञाप्रामाण्य (1.2.53), बहुल (3.3.1) आदि प्रत्ययों के द्वारा वे भाषा के उस लचीलेपन को बना रहने देते हैं, जिसके तहत वैयाकरणिक व्यवस्थाएँ भाषा के सहज प्रवाह को बाधित नहीं करतीं।

अष्टाध्यायी में चार हज़ार सूत्र हैं, जिन्हें आठ अध्यायों में बाँटा गया है। प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद हैं।

अष्टाध्यायी के ये सूत्र संस्कृत भाषा के विशाल भवन के असंख्य कक्षों में लगे तालों को खोलने की चाभियाँ बन जाते हैं।

पाणिनि के सूत्रों में अपनाई गयी पद्धतियाँ ये हैं— उत्सर्ग, अपवाद, विशेष, शेष, प्रतिषेध, अतिदेश, नियम (परिसीमन) असिद्धत्व (निवारण), अन्वय-व्यतिरेक। अष्टाध्यायी के संरचना में सूत्रों की ये कोटियाँ पाणिनि की दृष्टि मे स्पष्ट थीं— विधिसूत्र, संज्ञासूत्र, अधिकारसूत्र, परिभाषासूत्र, अतिदेशसूत्र, नियमसूत्र तथा अपवादसूत्र या निषेधसूत्र। पाणिनि के यह सूत्रावली विशिष्ट व्याख्या पद्धति की अपेक्षा रखती है। पतंजलि ने इसके अंतर्गत चार पद्धतियाँ बताई हैं— चर्चा (पदच्छेद), वाक्याध्याहार (अनुवृत्ति), उदाहरण, प्रत्युदाहरण।

सूत्रों की शृंखलाएँ परस्पर जुड़ी हुई हैं। विप्रतिषेधे परं कार्यम् (1.4.2)— इस सूत्र के अनुसार निषेध करने वाला सूत्र बाद में आता है, तो वह सामान्य नियम को बाधित कर के नयी व्यवस्था निर्धारित करेगा। अनुवृत्ति तथा अधिकार (शासन-क्षेत्र)में अनुवृत्ति वहीं तक काम करेगी जहाँ तक अधिकार है।

एक शासन क्षेत्र से दूसरे शासनक्षेत्र में भी संज्ञा और परिभाषा के सूत्र जिस क्षेत्र में आवश्यक हों, लाए जा सकते हैं। पतंजलि ने इनके आह्वान की दो पद्धतियाँ बताई हैं— यथोद्देश और कार्यकाल। या तो उन्हें वहीं परिभाषित किया गया हो, या उनके कार्य आ पड़ा हो।

पर इस सारी व्यवस्था में पाणिनि ने पूर्वत्रासिद्धम् (8.2.1) सूत्र द्वारा भाषिक संरचना की आंतरिक व्यवस्थाएँ की हैं। इसका आशय है सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धं स्यात् अर्थात् सवा सात अध्याय तक जितने सूत्र हैं उनके लिए शेष तीन पादों के सूत्र असिद्ध हैं, और इन पादों के सूत्र पहले के सूत्रों के लिए बाद के सूत्र असिद्ध हैं। इस तरह *अष्टाध्यायी* के 1.1.1 से लगा कर 8.1. तक एक स्तर है और 8.2.1 से लगा कर अंतिम सूत्र तक दूसरा स्तर। इससे कैसे संस्कृत भाषा की आभ्यंतर व्यवस्थाएँ व धाराएँ समझी जा सकती है। उदाहरणार्थ अकः सवर्णे दीर्घः यह सूत्र सपादसप्ताध्यायी का है। एचोऽयवायावः (6.1 78) यह सूत्र भी सपादसप्ताध्यायी का है। लोपः शाकल्यस्य (8.3.19) यह सूत्र अंतिम तीन पादों के अंतर्गत है। यह पहले के दोनों सूत्रों से बनी व्यवस्थाओं को भंग कर सकता था, पर नहीं कर सकता, क्यों कि लोपः शाकल्यस्य की व्यवस्था पूर्ववर्ती सारी व्यवस्थाओं को निरस्त कर देता है।

अर्थबोध की प्रक्रिया में शक्ति और विवक्षा ये अवधारणाएँ पाणिनि से विकसित हुईं। पद में शक्ति है। यह विवक्षा के द्वारा विनियोजित की जाती है। कहने वाली की इच्छा विवक्षा है।

हमारी परम्परा को वाक्केंद्रित कहना अधिक उचित है। यों एक भिन्न अर्थ में पाणिनि का व्याकरण भी अपने आप में प्रजनक व्याकरण है। वहाँ एक नियम दूसरे नियम को और एक सूत्र दूसरे सूत्र को उत्पन्न करता है। नियम जितने स्थिर हैं, उतने ही गत्यात्मक भी। सास्यूर वाक् की परिणतियों को लांग और परोल के दो रूपों में समझते हैं। लांग या भाषातंत्र बोलने वाले के भीतर अंतर्निहित है। पाणिनि की वाक्केंद्रित परम्परा परा या पश्यंती के रूप में वाक् को मनुष्य की चेतना से एकाकार ही देखती है। आद्य रूप मनुष्य वाक् का पहला रूप मनुष्य की अंतर्निहित क्षमता में है, दूसरा रूप प्रयोग में।

V

व्याकरण का एक अन्य नाम, जो पतंजलि के प्रयोग द्वारा संस्कृत की परम्परा में प्रसिद्ध और व्यवहृत हुआ, शब्दानुशासन है। पाणिनि ने मूलत: शब्द और उसके वाक्य में प्रयुक्त होने वाले रूप–पद को दृष्टि में रख कर अपना शास्त्र निर्मित किया। पद के भी अवयवों या घटकों को ले कर पाणिनि पदनिर्माण की प्रक्रिया और उसके अनंत क्षैतिज प्रसार की सम्भावनाएँ खोलते हैं, जबकि चॉम्स्की अपने प्रजनक व्याकरण (जेनेरेटिव ग्रामर) का शास्त्र वाक्यविन्यास को केंद्र में रख कर निर्मित करते हैं। वे प्रजनक व्याकरण और रचनान्तरणात्मक व्याकरण (ट्रांसफ़ॉर्मेशनल ग्रामर) के विमर्श में भाषा के अर्जन में ऊर्ध्वारोहण या तिर्यक् (वर्टिकल) प्रसार की सम्भावनाएँ प्रस्तुत करते हैं। चॉम्स्की की तुलना में पाणिनि और उनकी समग्र परम्परा को आधुनिक शब्दावली में लोगोसेंट्रिक भी कहा जाने लगा है। पर हमारी परम्परा को वाक्केंद्रित कहना अधिक उचित है।

यों एक भिन्न अर्थ में पाणिनि का व्याकरण भी अपने आप में प्रजनक व्याकरण है। वहाँ एक नियम दूसरे नियम को और एक सूत्र दूसरे सूत्र को उत्पन्न करता है। नियम जितने स्थिर हैं, उतने ही गत्यात्मक भी।

सास्यूर वाक् की परिणतियों को लांग और परोल के दो रूपों में समझते हैं। लांग या भाषातंत्र बोलने वाले के भीतर अंतर्निहित है। पाणिनि की वाक्केंद्रित परम्परा परा या पश्यंती के रूप में वाक् को मनुष्य की चेतना से एकाकार ही देखती है। आद्य रूप मनुष्य वाक् का पहला रूप मनुष्य की अंतर्निहित क्षमता में है, दूसरा रूप प्रयोग में।

ऊपर कहा गया है कि पाणिनि ने वाक्य का लक्षण नहीं किया, जब कि उनका पद का लक्षण (सुप्तिङ्तं पदम्) संस्कृतव्याकरण की परम्परा में बहुप्रचलित तथा बहुव्यवहृत है। कात्यायन ने वाक्य का लक्षण (एकतिङ् वाक्यम्) दिया भी, तो वह पदकेंद्रित व्यवस्था पर आधारित है, वाक्यविन्यास-केंद्रित व्यवस्था पर नहीं। सास्यूर पाणिनि द्वारा प्रदर्शित इस उपपत्ति पर अपना शब्द और अर्थ में विभेद की अपनी अवधारणा विकसित करते हैं कि शब्द वास्तविक भौतिक द्रव्य को संकेतित नहीं करते। अग्नि कहने से वास्तविक आग की लपट नहीं अग्नि की मानसिक अवधारणा संकेतित होती है। पाणिनि ने अर्थविशिष्ट शब्द के स्वरूप पर अपने सूत्र स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा (*अष्टाध्यायी*, 1.1.68) में जो स्पष्ट संकेत दिया था, उसके परिप्रेक्ष्य में सास्यूर संकेतित (सिग्निफ़ाइड) और संकेतक (सिग्निफ़ायर) की प्रक्रियाओं का विवेचन करते हैं।

पाणिनि-व्याकरण के नियमों का उपयोग भारतीय भाषाओं के लिए पार्सर वृक्ष बैंक बनाने तथा यांत्रिक अनुवाद की योजनाओं में किया जा रहा है।

किसी भी वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के बीच के रिश्ते कारक की अवधारणा के द्वारा परिभाषित किये जाते हैं। संस्कृत या किसी भी भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्द दो श्रेणियों में रखे जा सके हैं— धातु और प्रातिपदिक। पर ये शब्द वाक्य नहीं बना सकते, जब तक इनके साथ प्रत्यय न जुड़े हों। धातुओं में जुड़ने वाले प्रत्ययों को पाणिनि ने तिङ् कहा और प्रातिपदिकों में जुड़ने वाले प्रत्ययों को सुप् कहा। समस्त भाषा के अनंत पद दो कोटियों में बँट गये तिङ्त और सुबंत। तिङ्त का अर्थ हुआ तिङ् आदि प्रत्यय जिन के अंत में जुड़े हैं तथा सुबंत का अर्थ हुआ सुप् आदि प्रत्यय जिन के अंत में जुड़े हैं। तिङ्त और सुबंत भाषा के महायान की महायात्रा के दो पहिये हैं, इन में केवल एक पहिये से भाषा की गाड़ी नहीं चल सकती।

यह व्यवस्था सारी भाषाओं के साथ है। मोटे तौर पर वाक्य में प्रयुक्त शब्दों की संज्ञा और क्रिया ये दो श्रेणियाँ बनती हैं। कारक के कुल छह प्रकार बनते हैं— कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादन, अधिकरण। वाक्य का लक्षण ही पाणिनि की परम्परा में कात्यायन ने यह किया एकतिङ् वाक्यम् जिसमें कम से कम एक क्रिया हो वह वाक्य है।

पाणिनि के चार हज़ार सूत्रों पर 150 ई.पू. के लगभग कात्यायन ने 4266 वार्तिक रचे, और पाणिनि की *अष्टाध्यायी* तथा कात्यायन के वार्तिकों पर पतंजलि ने *महाभाष्य* लिखा। पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि को व्याकरण की मुनित्रयी माना गया। इसमें सातवीं शताब्दी में एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ कश्मीर के जयादित्य और वामन, इन दो विद्वानों ने *काशिकावृत्ति* के नाम से लिखा। बारहवीं शताब्दी से प्रक्रियाग्रंथों का समय आ जाता है। इस विकास यात्रा में पाणिनि के कारण संस्कृत व्याकरण प्रवाहनित्य बना रहा। उसके बहाव के लिए गुंजाइश है, फिर उसमें नित्यता या स्थिरता भी बनी हुई है। केवल बहाव से भाषा नहीं बच सकती, केवल स्थिरता में भी वह मर जाती है। पाणिनि ने स्थिरता और बहाव दोनों के लिए अपनी व्यवस्थाओं में अवकाश रखा। उन्होंने संस्कृत भाषा को इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया कि इसका मौलिक स्वरूप बदल नहीं सकता, पर नयी चीज़ें इसमें बराबर आ सकती भी हैं। संस्कृत वैसी की वैसी बनी रही और नये बदलावों को भी अपने में सम्मिलित करती रही। पाणिनि ने बहुलम्, विभाषा आदि के माध्यम से बहुत सारी गुंजाइश छोड़ रखी है जहाँ संस्कृत भाषा नये प्रयोगों को ले सकती है। उद्देश्य यही है कि चार हज़ार सूत्रों में कसा हुआ व्याकरण भी बिल्कुल न टूटे और भाषा लगातार नये समय से नयेपन के साथ संवाद भी करती चल सके।

पिछली सदी में अस्सी के दशक में अमेरिका के नासा में कंप्यूटर के वैज्ञानिक रिक ब्रिक्स ने घोषणा की कि कंप्यूटर को संस्कृत के जैसी कृत्रिम और विसंगतिमुक्त भाषा की ज़रूरत है। ब्रिक्स को जब बताया गया कि संस्कृत में वार्तालाप भी होता है, कविताएँ भी लिखी जाती हैं और पत्रिकाएँ भी छपती हैं, और जीवंत भाषा होने से वह विसंगतिमुक्त कैसे हो सकती है, तो उन्होंने कहा कि उनका आशय पाणिनि के द्वारा विकसित परिभाषाओं व विधानों से था या नव्यन्याय में विकसित भाषा की तकनीकों से। ब्रिक्स ने भारत आ कर संस्कृत पंडितों से भी इस विषय में परामर्श किया और *आर्टिफ़िशियल इंटिलिजेंस* पत्रिका में 1985 में 'नॉलेज रिप्रज़ेंटेशन इन संस्कृत ऐंड आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस' एवं 'शास्त्रिक संस्कृत एज़ अ मशीन ट्रांसलेशन इंटरलिंगुआ' शीर्षक से दो लेख प्रकाशित कराए।

पिछले तीन दशकों से पाणिनि द्वारा निरूपित कोटियों और परिभाषाओं के संगणकीय विनियोग पर कई केंद्रों में काम हो रहा है। मशीनी अनुवाद के पैकेज बनाने में तो पाणिनि के व्याकरण की कोटियों का उपयोग किया ही गया है। अमेरिका के जार्ज कार्डोना इस समय पाणिनि के सबसे बड़े विशेषज्ञों में एक माने जाते हैं। उन्होंने अपने एक व्याख्यान में भारत के पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम का वचन उद्धृत किया है, जिसमें कलाम साहब ने रक्षासंबंधी गोपनीय दस्तावेज़ों में कूटभाषा के रूप में संस्कृत का उपयोग करने की सलाह दी थी।

रिक ब्रिक्स तथा कलाम साहब ये दोनों वैज्ञानिक जिस रूप में पाणिनि की प्रविधियों या संस्कृत भाषा के उपयोग की सलाह देते हैं, वह साबित करता है कि पाणिनि की ज़रूरत आज पहले से भी अधिक है।